International Journal of Sanskrit Research 2023; 9(6): 140-142

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2023; 9(6): 140-142
© 2023 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 03-10-2023
Accepted: 04-11-2023

अपूर्बा हलदर
पीएच॰डी॰ शोधछात्र संस्कृत–विभाग
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय
समरहिल, शिमला, हिमाचल प्रदेश, भारत।

डॉ॰ सपना चन्देल
शोध–निर्देशक संस्कृत–विभाग
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय
समरहिल, शिमला, हिमाचल प्रदेश, भारत।

Corresponding Author:
अपूर्बा हलदर
पीएच॰डी॰ शोधछात्र संस्कृत–विभाग
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय
समरहिल, शिमला, हिमाचल प्रदेश, भारत।

सुश्रुतसंहिता में तिमिर नेत्र रोग का लक्षण एवं उपचार

अपूर्बा हलदर, डॉ॰ सपना चन्देल

DOI: https://doi.org/10.22271/23947519.2023.v9.i6c.2258

प्रस्तावना

ऋग्वेद के अनुसार चक्षु दर्शन शक्ति का आधार है। जिसके द्वारा हम इस जगत के समस्त शरीरधारी जीवों और वस्तुओं को उत्तम रूप से देख पाते हैं।[1] अथर्ववेद में बताया गया है कि यही आँखों में जब जलन होता है, दोनों एड़ियों और दोनों पंजों में पीड़ा उत्पन्न होता है तब आँखों में रोग पैदा होता है।[2] योग शास्त्र शिवसंहिता में बतलाया गया है कि शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध–इन पाँचों गुणों में नेत्र के द्वारा रूप का ग्रहण किया जाता है।[3] योगरत्नाकर में कहा गया है कि वात, पित्त, कफ आदि दोष कुपित होकर नेत्र में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं।[4] अग्निपुराणानुसार नख, नेत्र और शिराओं का जो पीलापन है, वे सब पित्त के प्रकोप से आविर्भूत होते है।[5] भावप्रकाश में बताया गया है कि शिराओं में स्थित दुष्ट हुए वातादि त्रिदोष ऊर्ध्व भाग में जाकर नेत्रों के दृष्टि इत्यादि अवयवों में अतीव दारूण रोगों को उत्पन्न करते हैं।[6] भेलसंहिता में कहा गया है कि सभी नेत्र रोग चार प्रकार के होते हैं। यथा–वातज, पित्तज, कफज और त्रिदोषज।[7]

सुश्रुतसंहिता में नेत्र रोग के पूर्वरूप में बताया गया है कि नेत्र में गंदलापन, संरम्भ अर्थात् स्वल्प वेदना, बारंबार आँखों में अश्रु आना, खुजली होना, भारीपन, ऊष्मादाह, जलन, पीड़ा आदि लक्षण दिखाई देते हैं।[8] शरीर के उष्ण होने पर सहसा पानी में प्रवेश, दूर दृष्टि, अनिद्रा, निरन्तर रोना, क्रोध या शोक, अभिघात अर्थात् चोट लगना, अधिक स्त्री सेवन, आँसुओं को रोकना, सूक्ष्मनिरीक्षण आदि से दोष नेत्र में व्याधि का जन्म देता है।[9] नेत्र में छियात्तर प्रकार के रोग दिखाई देता हैं। जैसे वातजन्य दश, पित्तजन्य दश, कफजन्य तेरह इत्यादि।[10] नयन में पाँच मण्डल, छः सन्धियाँ और छः पटल हैं।[11] उन छः पटल के अन्दर दो वर्त्मपटल हैं और चार पटल अक्षिगोलक में रहते हैं। इन्हीं अक्षिगोलक के चार पटलों में अत्यन्त दारुण अर्थात् अति दुःखदाय तिमिरनामक रोग होता है–

> द्वे वर्त्मपटले विद्याच्चत्वार्य्यन्यानि चाक्षिणि।
> जायते तिमिरं येषु व्याधिः परमदारुणः।।[12]

आयुर्वेदिक ग्रन्थ भैषज्यरत्नावली के भूमिका भाग में तिमिर के विषय में बताया गया है कि यह दृष्टि मण्डल का एक दृष्टिगत रोग है।[13]

सुश्रुतसंहितानुसार जब दूषित हुए दोष सिराओं के पथ द्वारा नेत्र के अभ्यन्तर प्रविष्ट होकर दृष्टि में प्रथम पटल के अन्दर स्थित हो जाते हैं, तब रोगी सब रूपों को धुंधला सा देखता है।[14] दोष के दूसरे पटल में प्रवेश करने पर दृष्टि पहले पटल की अपेक्षा अधिक मलीन हो जाती है।[15] दोष के तीसरे पटल में अवस्थित होने पर दर्शन में अक्षमता और दृष्टिविषमता की उत्पत्ति होती है। इसलिए रोगी केवल ऊपर की वस्तुओं को देख सकता है, परन्तु नीचे की वस्तुओं को नहीं देख सकता और बड़ी वस्तु को कपड़े से ढकी हुई सी देखता है।[16] बलशाली दोष दृष्टिमणि के रङ्ग में परिवर्तन होता है। परिवर्तनशील दोष का अवस्थान निचले भाग में हो तो निकटस्थ वस्तुओं को नहीं देख पाते एवं दोष की स्थिति ऊपर के भाग में हो तो दूर की वस्तु को नहीं देख सकता है। दोष के स्थान पार्श्व में हो तो पार्श की वस्तु को नहीं देख पाते इत्यादि। इस प्रकार से दोष की स्थिति ठीक रूप से अवस्थित न होने पर अर्थात् चञ्चलता के कारण एक वस्तु को अनेक रूप में देखता है। दोष के इस अवस्था को विशेष करके तिमिर कहते है।[17] तिमिर को उत्पन्न करने वाला वही दोष चतुर्थ पटल में प्रवेश करने से दृष्टि को सम्पूर्ण रूप से रोक देता है, जिसको 'लिङ्गनाश' कहते हैं।[18]

वातज तिमिर का लक्षण : अष्टांगहृदय के अनुसार वातजन्य तिमिर में रोगी वस्तु को व्याविद्ध या कुटिल रूप में देखता है।[19] सुश्रुतसंहिता में बताया गया है कि वायु के कारण उत्पन्न तिमिर में मनुष्य प्रत्येक रूप अर्थात् दृश्य वस्तुको घुमता हुआ, मलिन, किञ्चित् लालवर्ण एवं टेढ़ा–मेढ़ा देखता है।[20]

पित्तज तिमिर का लक्षण : सुश्रुतसंहितानुसार पित्तज तिमिर में रोगी को सूर्य, जुगनू, इन्द्रधनुष, विद्युत, मयूर के पङ्ख के समान चित्र–विचित्र और नीला–काला दृश्य दिखाई देते हैं।[21]

कफज तिमिर का लक्षण : कफज तिमिर में रोगी कफ की प्रावल्यता के कारण दृश्य वस्तु को स्निग्ध, श्वेत, गौरचामर अर्थात् श्वेत चँवर के समान शुक्ल, सफेदवादल के समान रङ्ग युक्त देखता है। इसी प्रकार छोटे वस्तु को स्थूलरूप में, बादलों रहित आकाश में बादलों को दौड़ते हुए देखता है।[22]

सन्निपातज तिमिर का लक्षण : तीनों दोषों के प्रकोप से उत्पन्न इस तिमिर रोग में रोगी चित्र या विचित्र तथा चारों ओर से विलुप्त, बहुत, दो में विभक्त, अङ्ग–प्रत्यङ्गों से हीन या अधिक अङ्गों से युक्त पदार्थों को देखता है। इसके सिवाय आकाश में ताराओं को चारों ओर देखता है।[23]

तिमिर रोग का उपचार

अथर्ववेदीय कौशिकगृह्यसूत्र में बताया गया है कि रोग के समूल नष्ट करने वाले उपायों का नाम भैषज्य है।[24] चरकसंहिता में कहा गया है कि रोगोत्पत्ति होने के पहले अथवा रोग की तरुण अवस्था में जो व्यक्ति अपना कल्याण चाहता है वह औषधि के द्वारा चिकित्सा अवश्य करे।[25] अग्निपुराण के अनुसार व्याधि का जो निदान अर्थात् मूल कारण है उसके नाश के लिए विपरीत औषधि देना चाहिए।[26] अष्टांगहृदय के अनुसार तिमिर की उपेक्षा करने से और चिकित्सा न करने पर काच व्याधि हो जाता है एवं काच की उपेक्षा करने से अन्धापन हो जाता है। इसलिए नेत्ररोग में दारुण तिमिर रोग की शीघ्र चिकित्सा करे।[27] भेलसंहिता के अनुसार ऊर्ध्व जत्रुगत अर्थात् मुख, नेत्र, नासिका, कण्ठ आदि में जितने भी रोग होते हैं, उनमें तैल अथवा औषधि सिद्ध घी देना चाहिए।[28] योगरत्नाकर में बताया गया, जब नेत्र रोग के दोष परिपक्व हो जावें तब अञ्जन वाली औषधि करनी चाहिए।[29] भैषज्यरत्नावली के अनुसार तेजपत्र, स्वर्णगैरिक, कर्पुर, मुलहठी, नीलोत्पल आदि एकत्र मिलाकर अञ्जन करने से सम्पूर्ण तिमिर नष्ट होते हैं।[30] गरुड़महापुराणानुसार त्रिकटु, त्रिफला, करञ्जन, सैन्धव, हल्दी, दारूहल्दी को भृंगराज रस में पीस कर नेत्र में अञ्जन लगाये। इससे तिमिरादि नेत्ररोगों का नाश होगा।[31] 'द्रव्यगुण विज्ञान' ग्रन्थ में बताया गया ममीरा नामक उद्भिद से सुरमा बनते है, जिसका उपयोग दृष्टिदौर्बल्य, अव्रणशुक्ल, तिमिर आदि रोगों में होता है।[32] योग ग्रन्थ घेरण्डसंहिता में उल्लिखित है कि 'त्राटक' कर्म करने से नेत्र के दोषों का निवारण होता है और दिव्य दृष्टि की प्राप्ति होती है।[33] हठयोगप्रदीपिका के अनुसार यह 'त्राटक' कर्म नेत्र के रोगों का ही नाशक है।[34] योगतंगिणी में बतलाया गया है कि चित्रक की जड़ की छाल, त्रिफला, पटोलपत्र और इन्द्रजौ इनके काढ़ा में घृत डाल कर पिए, तो नेत्रों के लिए हितकर होता है और विशेष करके तिमिर रोग को नाश करता है।[35]

सुश्रुतसंहिता में कहा गया है कि शतावरी मूल के रस से बनाई खीर, आंवले के स्वरस या आंवले से सिद्ध किये दूध में बनाई खीर, या त्रिफला के काढ़ा में सिद्ध किया जौ का भात घी के साथ खाने से तिमिर दूर होता है।[36] पुरातन घी, त्रिफला, शतावरी, पटोलपत्र, मूंग, आंवला, जौ इन पदार्थओं को सेवन करने वाले मनुष्य को भयानक तिमिर रोग से भय नहीं होता है।[37] जीवन्तीशाक या चौपतिया, सुनिषण्णक, उत्तम बथुवा, चिल्ली, कच्ची मूली, जांगल पक्षियों का मांस तथा हरिणादि जंगली प्राणियों के मांस दृष्टि के लिए हितकारक है।[38] परवल, ककोड़ा, करेला, बैंगन, अरणी, करीर के फल और शाक, सुहांजन, झिण्टी इनके शाक घी में बनाये, ये दृष्टि के लिए प्रसाधक हैं।[39] तिमिर में राग प्राप्त हो जाने पर सिरामोक्षण वर्जित है क्योंकि यन्त्र अर्थात् शस्त्रकर्म से उत्पीड़ित दोष बढ़ कर दृष्टि शक्ति को शीघ्र नष्ट कर देता है।[40] प्रथम पटल में आश्रित राग रहित तिमिर साध्य है, द्वितीय पटल में प्राप्त तथा रागयुक्त तिमिर कष्टसाध्य है और तृतीय पटलगत तिमिर असाध्य है।[41] तिमिर रोगों में राग प्राप्त हो जाने पर भी इनका यापन करने के लिये शास्त्रोक्त उपचार करना चाहिए तथा जोकों से रक्तमोक्षण करवाना चाहिए।[42]

वातज तिमिर का उपचार : अष्टांगहृदय में बताया गया है कि वातजन्य तिमिर में दशमुल के क्वाथ में, घी से चौगुणे दूध में और त्रिफला कल्क के साथ घृत को पकाकर सेवन करे।[43] सुश्रुतसंहिता के अनुसार वातज तिमिर में एरण्ड तैल को अल्प उष्ण दूध में मिला कर रोगी को देना चाहिए।[44]

पित्तज तिमिर का उपचार : पित्तजन्य तिमिर में घृत मिश्रित त्रिफला चुर्णों को सर्वदा सेवन करे[45] और काकोल्यादिगण से पकाया हुआ बकरी या भेड़ का घी नस्यरूप में ग्रहण करे।[46] अष्टांगहृदय में बतलाया गया है कि शर्करा, इलायची, निशोथ इनके चूर्णों को सहेद के साथ मिला कर विरेचन करे।[47]

कफज तिमिर का उपचार : भैषज्यरत्नावली में कहा गया है कि कफज तिमिर में हरड़, हल्दी, पिप्पली, सेन्धानमक इन्हें एकत्र मिश्रित करे और जल से वर्त्ति बनाकर अञ्जन करे।[48] सुश्रुतसंहिता के अनुसार विडंग, पाठा, अपमार्ग तथा हिंगोट की छाल के साथ खस मिलाकर चूर्ण करके धूम्रपान करे।[49] मैनसिल, त्रिकटु, शंख, मधु आदि में चतुर्गुण जल मिला कर रसक्रिया विधि से पाक करके सेवन करे।[50]

सन्निपातज तिमिर का उपचार : त्रिदोषज अर्थात् सन्निपात तिमिर में वात–पित्त–कफ नाशक द्रव्यों के कल्क और क्वाथ के द्वारा सिद्ध घृत या त्रिवृत से सिद्ध किये हुए तैल का सेवन करे[51] एवं सौवीराञ्जन को अग्नि में तपा कर अनेक बार या सात से अधिक बार अष्टमूत्रों में और त्रिफला के काढ़ा में बुझाए। फिर इसको गीथ, उल्लू आदि रात्रि में घूमने वाले पशु–पक्षियों की अस्थि के बने नलकों में रख कर बहते हुए नदी के पानी में एक महीने तक पड़ा रहने दे। एक मास के पश्चात् इस अञ्जन को निकाल कर इसमें मेषश्रृंगी के फूल और मुलैहठी का चूर्ण मिलाकर इस अञ्जन को सन्निपातज अथवा त्रिदोषज तिमिर में उपयोग करे।[52]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि नेत्र मानव शरीर का एक विशेष अंग है। जिसके द्वारा मनुष्य दुनिया की सभी वस्तुओं या पदार्थों को देखते है। परन्तु यही आँख एक समय दोषजनित व आघातवश दृष्टिगत तिमिर रोग का शिकार होता है। तिमिर के परिणामस्वरूप, लोगों को दूर और पास की वस्तुएँ धुंधली दिखाई देती है। ऐसी स्थितियों में नेत्रों का इलाज करवाना अत्यन्त जरूरी है। इसलिए मनुष्य को आयुर्वेदिय औषधियों को अपनाना चाहिए। क्योंकि आयुर्वेदिय पद्धति के माध्यम से भी नेत्र रोग में निजात मिल सकती है और जिसके दुष्प्रभाव बहुत कम है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. चक्षुर्विख्यै तनूभ्यः। सं चेदं वि च पश्येम्।। ऋग्वेद, 10/158/4
2. अक्ष्योर् आदिद्योत पार्ष्ण्योः प्रपदेश् च यत्। अथर्ववेद, 6/24/2
3. चक्षुषा गृह्यते रूपम्। शिवसंहिता, 1/82
4. नेत्रे विकाराञ्जनयन्ति दोषाः। योगरत्नाकर (उत्तरार्ध), नेत्ररोग निदान, नेत्ररोगाधिकार, कारिका–9, पृ॰ 342

5. नखनेत्रशिराणां तु पीतत्वम्। अग्निपुराण (द्वितीय भाग), 117/45
6. शिराऽनुसारिभिर्दोषैर्विगुणैरूर्ध्वमाश्रितैः। जायन्ते नेत्रभागेषु रोगाः परमदारुणाः।।
भावप्रकाश (द्वितीय भाग), चिकित्सा प्रकरण, नेत्ररोगाधिकार, कारिका–10
7. वातजं पित्तजं चैव श्लेष्मजं सन्निपातजम्।
अक्षिरोगं विजानीयान्मानवानां चतुर्विधम्।। भेलसंहिता, सूत्रस्थान, 26/20
8. तत्राविलं संसरम्भमश्रुकण्डूपदेहवत्।
गुरुषातोदरागद्यैर्जुष्टं चाव्यक्तलक्षणैः। सुश्रुतसंहिता, उत्तरतन्त्र, 1/21,22
9. उष्णाभितप्तस्य जलप्रवेशाद् दूरेक्षणात् स्वप्नविपर्ययाच्च।
प्रसक्तसंरोदन कोपशोकक्लेशाभिघातादतिमैथुनाच्च।।
बाष्पग्रहात् सूक्ष्मनिरीक्षणाच्च नेत्रे विकारान् जनयन्ति दोषाः। वही, 1/26,27
10. वाताद् दश तथा पित्तात् कफाच्चैव त्रयोदश। वही, 1/28
11. मण्डलानि च सधीश्च पटलानि च लोचने।
यथाक्रमं विजानीयात् पञ्च षट् च षडेव च।। वही, 1/14
12. वही, 1/17
13. भैषज्यरत्नावली, नेत्ररोगाधिकार, भूमिका भाग, पृ॰ 657
14. सिराभिरभिसंप्राप्य विगुणोऽभ्यन्तरे भृशम्। प्रथमे पटले दोषो यस्य दृष्टौ व्यवस्थितः।।
अव्यक्तानि स रूपाणि सर्वाण्यव प्रपश्यति। वही, 7/6,7
15. दृष्टिर्भृशं विह्वलति द्वितीयं पटलं गते। वही, 7/7
16. ऊर्ध्वं पश्यति नाधस्तात्तृतीयं पटलं गते।
महान्त्यपि च रूपाणि च्छादितानीव वाससा। वही, 7/11
17. यथादोषं च रज्यते दृष्टिर्दोषे वलीयसि। अधःस्थिते समीपस्थं दूरस्थं चोपरिस्थिते।
पार्श्वस्थिते तथा दोषे पार्श्वस्थानि न पश्यति।। द्विधास्तिते त्रिधा पश्येद् बहुधा चानवस्थिते।
तिमिराख्यः।। वही, 7/12,13,15
18. स वै दोषः चतुर्थः पटलं गतः।
रूणद्धि सर्वतो दृष्टिं लिङ्गनाशः स उच्यते। वही, 7/15,16
19. तत्र वातेन तिमिरे व्याविद्धमिव पश्यति। अष्टांगहृदय, उत्तरस्थान, 12/8
20. तत्र वातेन रूपाणि भ्रमन्तीव स पश्यति।
आविलान्यरूणाभानि व्याविद्धानि च मानवः।। सुश्रुतसंहिता, उत्तरतन्त्र, 7/18,19
21. पित्तेनादित्यखद्योतशक्रचापतडिद्गुणान्।
शिखिबर्हविचित्राणि नीलकृष्णानि पश्यति।। वही, 7/19,20
22. कफेन पश्येद्रूपाणि स्निग्धानि च सितानि च।
गौरचामरगैराणि श्वेताभ्रप्रतिमानि च।
पश्येदसूक्ष्माण्यत्यर्थं व्यभ्रे चैवाभ्रसंप्लवमू।।
सलिलप्लावितानि। वही, 7/20,21,22
23. सन्निपातेन चित्राणि विप्लुतानि च पश्यति।
बहुधा वा द्विधा वाऽपि सर्वाण्येव समन्ततः।
हीनाधिकाङ्गन्यथवा ज्योतींष्यपि च पश्यति।। वही, 7/23,24
24. लिङ्गयुपतापो भैषज्यम्। अथर्ववेदीय कौशिकगृह्यसूत्रम्, 4/2
25. तस्मात् प्रागेव रोगेभ्यो रोगेषु तरुणेषु वा।
भेषजैः प्रतिकुर्वीत च इच्छेत् सुखमात्मनः। चरकसंहिता (प्रथम भाग), सूत्रस्थान, 11/63
26. व्याधेर्निदानस्य तथा विपरीतमयौषधम्। अग्निपुराण (द्वितीय भाग), 117/33
27. तिमिरं काचतां याति काचोऽप्यान्ध्यमुपेक्षया।
नेत्ररोगेष्वतो घोरं तिमिरं साधयेद् द्रुतम्।। अष्टांगहृदय, उत्तरस्थान, 13/1
28. ऊर्ध्वजत्रुगता ये च रोगास्सम्परिकीर्तिताः।
नस्यकर्म हितं तेषां तैल वा सर्पिरेव वा।। भेलसंहिता, सिद्धिस्थान, 2/17
29. अथ संपक्वदोषस्य प्राप्तमञ्जनमाचरेत्। योगरत्नाकर (उत्तरार्ध), तिमिरे सामान्य चिकित्सा,
कारिका–1, पृ॰ 364
30. पत्रगैरिककर्पूरयष्टीनीलोत्पलाञ्जनम्।
नागकेशरसंयुक्तमशेषतिमिरापहम्।। भेषज्यरत्नावली, नेत्ररोगाधिकार, कारिका–134
31. त्रिकटु त्रिफला चैव करञ्जस्य फलानि च।
सैन्धवं रजनी द्वे च भृङ्गराजरसेन हि।
पिष्ट्वा तदञ्जनादेव तिमिरादिविनाशनम्।। गरुड़महापुराण, पूर्व खण्ड, 177/7
32. आचार्य प्रियव्रत शर्मा, द्रव्यगुण–विज्ञान (द्वितीय–तृतीय भाग), पृ॰ 94
33. नेत्रदोषाविनश्यन्ति दिव्यदृष्टिः प्रजायते। घेरण्डसंहिता, 1/54
34. मोचनं नेत्ररोगाणाम्। हठयोगप्रदीपिका, 2/32
35. चित्रकमूलत्रिफलापटोलयवसाधितं पिबेदंभः।
सघृतं निशि चक्षुष्यं तिमिरं च विशेषतो हंति।। योगतरंगिणी (द्वितीय भाग), 21/40
36. शतावरीपायस एव केवलस्तथाकृतो वाऽऽमलकेषु पायसः।
प्रभूतसर्पिस्त्रिफलोदकोत्तरो यवौदनो वा तिमिरं व्यपोहति।। सुश्रुतसंहिता, उत्तरतन्त्र, 17/49
37. घृतं पुराणं त्रिफलां शतावरीं पटोलमुद्गामलकं यवानपि।
निषेवमाणस्य नरस्य यत्नतो भयं सुधोरात्तिमिरान्न विद्यते।। वही, 17/48
38. जीवन्तिशाकं सुनिषण्णकं च सतण्डुलीयं वरवास्तुकं च।
चिल्ली तथा मूलकपोतिका च दृष्टेर्हितं शाकुनजाङ्गलं च।। वही, 17/50
39. पटोलकर्कोटककारवेल्लवार्ताकुतर्कारिकरीरजानि।
शाकानि शिग्रवार्तगलानि चैव हितानि दृष्टेर्घृतसाधितानि।। वही, 17/51
40. विवर्जयेत्सिरामोक्षं तिमिरे रागमागते।
यन्त्रेणोत्पीडितो दोषो निहन्यादाशु दर्शनम्।। वही, 17/52
41. अरागि तिमिर साध्यमाद्यं पटलमाश्रितम्।
कृच्छं द्वितीये रागि स्यात् तृतीये याप्यमुच्यते।। वही, 17/53
42. रागप्राप्तेष्वपि हितास्तिमिरेषु तथा क्रियाः।
यापनार्थं यथोद्दिष्टाः सेव्याश्चापि जलौकसः।। वही, 17/54
43. वातजे तिमिरे तत्र दशमूलाम्भसा घृतम्। अष्टांगहृदय, उत्तरस्थान, 13/49
44. पयोविमिश्रं पवनोद्भवे हितं वदन्ति पञ्चाङ्गुलतैलमेव तु। सुश्रुतसंहिता, उत्तरतन्त्र, 17/29
45. सदाऽवलिह्यात्त्रिफलां सुचूर्णितां घृतप्रगाढ़ां तिमिरेऽथ पित्तजे। सुश्रुतसंहिता, उत्तरतन्त्र, 17/31
46. हितं घृतं केवल एव पैत्तिके ह्यजाविकं यन्मधुरैर्विपाचितम्। वही, 17/33
47. शर्करैलात्रिवृच्चूर्णैर्मधुयुक्तैविरेचयेत्। अष्टांगहृदय, उत्तरस्थान, 13/64
48. हरीतकी हरिद्रा च पिप्पलो लवणानि च। भैषज्यरत्नावली, नेत्ररोगाधिकार, कारिका–110
49. विडङ्गपाठाकिणिहीङ्गुदीत्वचः प्रयोजयेद् धूममुशीरसंयुताः।। सुश्रुतसंहिता, उत्तरतन्त्र, 17/42
50. मनःशिलात्र्यूषणशङ्खमाक्षिकैः ससिन्धुकासीसरसाञ्जनैः क्रियाः। वही, 17/43
51. त्रिदोषजे तैलमुशन्ति तत्कृतम्। वही, 17/30
52. यदञ्जनं वा बहुशो निषेचितं समूत्रवर्गे त्रिफलोदके श्रृते।
निशाचरास्थिस्थितमेतदञ्जनं क्षिपेच्च मासं सलिलेऽस्थिरे पुनः।
मेषस्य पुष्पैर्मधुकेन संयुतं तदञ्जनं सर्वकृते प्रयोजयेत्।। वही, 17/44,45